विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | पौष पूर्णिमा | १४ जनवरी १९८७ | वर्ष १६ अंक ७

धम्म वाणी

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।
पञ्ञा पासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं ।
पब्बतट्ठो व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥
--धम्मपद २/८.

जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से जीत लेता है तो वह प्रज्ञा रूपी प्रसाद पर चढ़ा हुआ शोक रहित हो जाता है. ऐसा शोक रहित धीर मनुष्य शोकग्रस्त विमूढ़ जनों को ऐसे ही (करुणभाव से) देखता है जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ कोई आदमी जमीन पर खड़े हुए लोगों को देखता हो.

ध्यानशास्त्री गोयन्का के गुरु बर्मी संत ऊ बा खिन

...पृथ्वीसिंह गाला

अधिकांश महापुरुषों का जन्म गरीबी में हुआ है क्योंकि उन्हें गरीबी का मुकाबला करके अपने अंधकारमय भविष्य को उज्जवल बनाना होता है ।

ऐसे ही बर्मा के एक गरीब परिवार में एक बालक का जन्म हुआ । उनका नाम था ऊ बा खिन । इस नाम का अर्थ है— ऊ याने पूज्य, बा याने पिता, खिन याने प्रिय । अर्थात् परम पूज्य प्रिय पिता ।

कुशाग्र बुद्धि व कठोर परिश्रम के कारण मेट्रिक की परीक्षा में प्रथम आकर सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की लेकिन घर की परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण वे उच्च शिक्षा नहीं प्रात कर सके । सरकारी कार्यालय में मामूली क्लर्क की नौकरी मिली परन्तु अपनी उच्च नैतिकता, परिश्रम तथा कर्तव्यनिष्ठा के बल पर वे स्वतंत्र बर्मा के अकाउंटेंट जनरल बन गए ।

उनके सहपाठी आई. सी. एस. और बी. सी. एस. जैसी विविध परीक्षाओं में पास होकर भी किसी विभाग के अध्यक्ष न बन सके लेकिन वे मात्र हाई स्कूल पास होकर एकाधिक विभागो के अध्यक्ष बने और सरकारी नौकरी में रहकर अनेक समितियों के सलाहकार सदस्य बने ।

ये सारे पद मात्र शोभा के लिए नहीं थे बल्कि काफी जिम्मेदारी के थे परन्तु ऊ बा खिन थकावट के बिना हंसते हंसते सारे काम संभालने में समर्थ थे ।

जिन्होंने उनको हमेशा कार्यरत देखा है उनके मन में एक प्रश्न सदैव उठता था कि उनमें यह शक्ति कहाँ से आयी जिससे कि इतना सारा कार्य वह इतनी सुयोग्यता से कर पाते थे । अपनी सत्यनिष्ठा से उन्होंने अपने ऊपरी अधिकारियों का दिल जीत लिया था ।

इस प्रकार ५५ वर्ष की अवस्था होने पर भी सरकार ने उन्हें सेवा-निवृत्त न करके और १२ वर्षों तक काम में लगाए रखा । जब वे ६७ वर्ष के हुए तो सेवामुक्त होने की जिद की और सरकारने अनिच्छा से ही मुक्त किया । इतने लंबे समय तक बर्मी सरकार में नौकरी केवल ऊ बा खिन की ही हुई होगी ।

आलस्य को कभी भी अपने नजदीक नहीं आने देना सयाजी ऊ बा खिन का सबसे बड़ा गुण था । सत्यनिष्ठा, सद्भाव व ईमानदारी उनके स्वभाव के अंग थे ।

ऊ बा खिन जैसे सत्यनिष्ठ अधिकारी जिस विभाग में रहे, भले वह काजल की कोठरी के समान भ्रष्टाचार से भरा था पर वे बेदाग ही रहे । भ्रष्टाचार से मुक्त रहे । इतना ही नहीं, अपने अनेक साथी और सहयोगियों को भी अपने जैसा बनाया । सरकारी नौकरी में धन-वैभव अथवा पद-प्रतिष्ठा के प्रलोभन से वे सदा दूर ही रहे । हिमालय जैसे अडोल रहे । दूसरी ओर राजनेताओं व मंत्रियों के भय के कारण उनके दबाव में न आकर अपने फैसले सदैव सत्य पर आधारित ही दिए । उनकी निर्भयता ऊ नू व ऊ बा श्वे की नागरिक सरकार में ही नहीं, बल्कि जनरल नेविन की सैनिक सरकार में भी हमेशा न्याय के पक्ष में रही । बड़े से बड़े काम की सिद्धि के लिए झूठ का सहारा लेना उनके स्वभाव के विपरीत था ।

सरकारी सेवा - निवृत्ति के बाद उनकी महत् धर्म कामना यही थी कि अन्य देशों में जाकर मंगलकारी मार्ग का प्रचार व प्रसार करें जिससे कि दुःखी मानव सच्चा सुख व शांति प्राप्त कर सके। परन्तु सरकार ने उनको अन्य देशों में जाने की अनुमति नहीं दी। एक सरकारी उच्चाधिकारी ने सलाह दी कि यदि आप विदेश में अपने जीवन - निर्वाह के उद्देश्य से नौकरी के लिए जाने का आवेदन करें तो पासपोर्ट तुरंत मिल जायेगा। " इच्छापूर्ति भले न हो, परन्तु असत्य का सहारा नहीं लूंगा, " कहकर प्रस्ताव ठुकरा दिया। असत्य का सहारा उन्हें जीवन में किसी भी हालत में स्वीकार्य नहीं था। ऊ बा खिन ने अपने मन में निश्चय किया कि धर्मसेवा के लिए भले ही कुछ दिन तड़पना पड़े, पर जिस झूठ का उनके जीवन से बैर था, उसका सहारा कैसे लेते ?

प्रामाणिक अधिकारी

सन् १९४२ के फरवरी - मार्च की बात है। जापानी सेना टांगू जीतकर मांडले की ओर बढ़ रही थी। अंग्रेज सरकार तेजी से बर्मा छोड़कर भारत की ओर भाग रही थी। ऊ बा खिन उन दिनों बर्मा - रेल्वे में अकाउंटेंट थे और मांडले शहर में निवास करते थे। एक दिन जापानियों ने मांडले शहर पर जोरदार बम - वर्षा की जिसके कारण स्टेशन सहित रेल्वे कार्यालय भी ध्वस्त हो गया। रेल्वे के विदेशी कर्मचारी मांडले छोड़कर भाग निकले। लास्यो से हवाई मार्ग द्वारा भारत भाग जाने की योजना थी। ऊ बा खिन मांडले में ही रहे। उनको तो भारत जाना नहीं था। बमवर्षा के बाद जब शांति हो गयी तो रेल्वे की ध्वस्त इमारत का निरीक्षण करने निकले। ऊ बा खिन ने देखा कि सभी वस्तुएं नष्ट हो गयीं थी लेकिन तिजोरी सलामत पड़ी थी। चाभी उनके पास थी। कूड़े को हटाकर तिजोरी खोलकर रेल्वे - खजाने के रूपए निकाले। यह सरकारी धरोहर थी, इसे भागती सरकार को सुपुर्द करना उन्होंने जरूरी समझा। ऊ बा खिन जानते थे कि बदलती राज्य - व्यवस्था के समय अस्त - व्यस्त परिस्थिति में कौन पूछनेवाला है कि रकम कहाँ गयी ? और जान बचाकर भागता मालिक तो पूछता भी कैसे ? लेकिन ऊ बा खिन उसमें से एक पाई भी अपने पास रखने की कल्पना कैसे करते ? ऐसी थी उनकी सत्यनिष्ठा और प्रामाणिकता। उस समय उनकी छोटी बच्ची बहुत ही बीमार थी। दवा के लिए पैसों की सख्त जरूरत थी। लेकिन ऊ बा खिन के अन्तर में फर्ज की आवाज सुनाई दे रही थी। वे तड़पते परिवार को छोड़कर तुरंत जीप से मेम्यो की ओर चल दिए और अपने ऊपरी अधिकारी को सारा धन सौंपकर ही संतोष की सांस लेते हुए मांडले वापस लौटे।

वे करुणा और मैत्री के साक्षात् अवतार थे। सरकारी जिम्मेदारियों में व्यस्त रहते हुए भी लोकसेवा में लगे रहे। लोक - कल्याण तथा शांति के लिए हर महीने विपश्यना शिविर के आयोजन के लिए समय निकाल ही लेते। कोई दुःखी व संतप्त व्यक्ति उनके पास ध्यान सीखने आता तो अपनी अनेक कठिनाइयों के बावजूद उसको ध्यान सिखाते। कभी एक या दो व्यक्तियों के लिए भी शिविर लगाते। यह उनके लिए बड़े से बड़ा काम था। प्रत्येक साधक/साधिका के प्रति उनका असीम वात्सल्यभाव था। सब उनको अपनी औरस संतान जैसे लगते थे।

मृत्यु के तीन दिन पहले तक उन्होंने ध्यान सिखाने का काम किया था। जीवन के अंतिम क्षण तक साधकों को धर्म - दीक्षा देते रहे।

उनके मन में प्रत्येक साधक के प्रति करुणा और विश्व के प्राणीमात्र के प्रति असीम प्यार था। जो जो उनके आश्रम के निवासी थे वे जानते हैं कि उनकी असीम मैत्री भावना के कारण आश्रम के सरिसृप याने सांप - बिच्छुओं ने भी अपना हिंसक भाव त्याग दिया था। सभी प्राणी उनकी मैत्री से प्रभावित थे। आश्रम - भूमि के कण कण व प्रत्येक वृक्ष एवं वनस्पतियों के प्रति भी उनका प्रेम असीम था। उस उत्तम तपोभूमि के मीठे फल की सुरभि आज सर्वत्र फैली दिखाई देती है।

एक समय एक विचित्र घटना घटी। बर्मा जैसे धन - धान्य बहुल देश में अकाल की स्थिति पैदा हुई। पैदावार कम होनेके कारण सरकार को रॉशनिंग करनी पड़ी। प्रजा को ऐसी परिस्थिति का अनुभव नहीं था उस समय बर्मा के इस संत के अन्दर असीम करुणा व मैत्रीभाव जाग पड़े। केवल मुंह से नहीं, अंग अंग में वेदना हुई और बोल पड़े —

" फीतो भवतु लोको च, राजा भवतु धम्मिको "

लोग समृद्धशाली हों, देश का राजा धार्मिक हो !

थोड़े समय के बाद भारत में भी अकाल पड़ा। लगातार दो वर्ष ऐसी स्थिति रही। संत - हृदय करुणा से भर उठा। उन्होने आश्रम के एक कोने में शुभ्र हिमालय के उच्च शिखर की प्रतिकृति बनवायी। रोज उस कृति के सामने खड़े होकर ध्यान करते और समग्र भारत के प्रति अपने हृदय की मूक ध्वनि से मंगल कामना करते। वे कहते थे न जाने मैंने कितनी ही बार भारत में जन्म लिया है। पावन हिमप्रदेश में न जाने कितनी ध्यान भावना की है। आज भारत के लोग दुःखी हैं, उनको सुख-शांति का लाभ हो और सारे भारत के लोग धर्मविहारी हों। कभी कभी वे कहते, " मुझे भारत जरूर जाना है। बर्मा पर भारत का जो आध्यात्मिक ऋण है वह भारत को वापस करना है। मुझे प्राप्त हुआ यह अमूल्य विपश्यना ध्यान योग भारत में जन्मा है, भगवान बुद्ध के समय की धर्म - विरासत है और उसको वापस वहाँ पहुँचाना है। अपना खोया हुआ खजाना पाकर भारत धन्य हो जायेगा। कौन जाने उस देश में इस समय कितने ही पुण्य पारमितावाले लोग तैयार बैठे होंगे। उनको सद्धर्म की थोड़ी सी चेतावनी मिलते ही जागृत हो उठेंगे और धर्म मार्ग पर चलकर अपना कल्याण साधेंगे। " सयाजी खुद तो भारत न आ सके लेकिन उनके आदेशानुसार उनके धर्मपुत्र तथा निष्ठावान शिष्य ध्यानशास्त्री श्री गोयन्काजी आए और भारत के अनेक शहरों में गुरु - प्रसाद के रूप में भगवान बुद्ध के समय की ध्यान भावना " विपश्यना ध्यान योग " के शिविरों का आयोजन कर रहे हैं।

इस पुण्य दिवस (१६ जनवरी १६७१) पर उस महापुरुष का स्मरण करके उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करके हम थोड़ा भी अपने कर्तव्य पथ पर चलने का प्रयत्न करें तो उनकी निष्काम सेवाभावना, करुणा और मैत्री भावना की सुगंध ही फैलेगी।

भवतु सब्ब मंगलं ! (सब का कल्याण हो)

यूनि. स्टाफ क्वार्टर्स,
अहमदाबाद - ३८०००६.

(गुजराती पत्रिका "धर्म संदेश" के अगस्त १६७२ के अंक से साभार।)

साधकों के उद्‌गार

आस्ट्रेलिया की केरी मैकनील लिखती हैं, " आस्ट्रेलिया आकर हमें धर्म का अद्‌भुत उपहार देने के लिए आपको बहुत बहुत धन्यवाद ! इतनी शीघ्र मेरे हृदय - परिवर्तन का सारा श्रेय आप तथा अत्युत्तम धर्म को ही जाता है, जिसके लिए मैं सदैव आपकी कृतज्ञ रहूंगी। अनेकों का सुख - शांति - संवर्धन में भी सहायक बन सकूं, यही मंगल कामना ! "

❀

रक्सौल के श्री दुर्गादत्त धानुका " लिखते हैं, विपश्यना आरंभ करने के दो वर्ष बाद एक दिन मध्य रात्रि में दुःखद घनीभूत संवेदना हुई। डाक्टरों ने हृदय रोग बताकर महीने भर के लिए मुकुन्दगढ़ (राजस्थान) के स्थानीय अस्पताल में भर्ती करा दिया। उस समय विपश्यना छूट गयी थी पर एक स्नेही साधक ने आनापान करने का उत्साह दिया। दवा चलती रही। एक वर्ष बाद अचानक पू. गुरूजी का एक कार्ड मिला। मन में उत्साह जागा, उनकी मंगल मैत्री का बल मिला और सब दवा उठाकर फेंक दी। विपश्यना के अभ्यास में जुट गया। अब सब कुछ नार्मल है और इस ७० वर्ष की अवस्था में भी बहुत स्वस्थ अनुभव करता हूँ। पहले प्रतिक्रिया करके जो भवचक्र का ही निर्माण करता था अब धर्मचक्र में बदलकर जीवन को मंगलमय बना रहा हूं। चाहता हूँ ऐसे ही सभी धर्मभ्रष्ट परिचितों - मित्रों व सगे - संबंधियों का मंगल - कल्याण हो ! ..."

❀

जयपुरसे श्री कन्हैयालाल लोढ़ा लिखते हैं, " आप तन, मन, जिनरूप विजातीय तत्वों - विकारोंसे रहित हो, स्वस्थ रहें ! आप सदैव प्रसन्न रहते हुए धर्म का वितरण दीर्घ काल तक करते रहें, यही शुभ भावना है। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। विपश्यनामें दिन - प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिक रस आ रहा है। शांति, मुक्ति (स्वाधीनता) प्रीतिभक्तिकी अनुभूति बराबर बढ़ रही है। विपश्यना ही जीवन है। विपश्यना रहित जीवन; जीवन नहीं मृत्यु है, व्यर्थ है ऐसा अनुभव बार - बार होता है। पूरा जीवन राग-द्वेष रूपी प्रतिक्रिया रहित हो, विपश्यना में बीते और कर्मों के फल स्वरूप जो अनुकूल परिस्थिति आती है उसका बिना भोग किए सदैव समतामय प्रसन्नतामें रहूं, ऐसी भावना है। इसी में जीवनकी सार्थकता व सफलता लगती है।

आपने धर्म का क्रियात्मक और साथही सैद्धान्तिक मार्ग बताया, आपकी इस कृपा का आभार शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। मैं जब प्रथम बार अजमेरमें विपश्यनामें बैठा था तब आपने फरमाया था कि आश्रव, संवर, निर्जरा, उदीरणा, मुक्ति, निर्वाणका वास्तविक रूप विपश्यनासे अनुभव होगा। सो आपके उक्त कथनकी सत्यता का साक्षात्कार हो रहा है। आपकी कृपा से इनका स्वरूप व रहस्य दिन - प्रतिदिन स्पष्ट होता जा रहा है। साथ ही प्रसन्नता भी बढ़ती जा रही है। मैं देख रहा हूं-धर्म लोकातीत बनाता है। इस लोक व परं लोक से परे ले जाता है। अतः विपश्यी को लोक संबंधी ज्ञान की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती है। उसे इस लोक व परलोक से कोई लेना - देना नहीं रहता है। वह तो केवल लोक द्रष्टा रहता है। धर्म देहातीत अवस्था का अनुभव कराता है। इस प्रकार विपश्यक शरीर और संसारसे अतीत अवस्था का अनुभव कर सर्व दुःखोंसे इसी शरीर में रहते हुए ही सदाके लिए छुटकारा पा जाता है। मैं देख रहा हूं कि धर्म का फल तत्काल मिलता है और ऋणण रहता है। धर्म की महिमा निराली ही है। धर्म रहित जीवन दुखियारा जीवन है, व्यर्थ है।

❀

बम्बई की सौ. पुष्पा जानी लिखती हैं, " बचपनसे ही मुझे सत्य एवं ईश्वरके मार्ग पर चलनेकी इच्छा रही है। कुटुम्ब प्रणालीके मुताबिक कर्मकांडके आसान मार्गका सहारा लेकर चल रही थी, मगर समाधान होता नहीं था। जब तक सही मार्ग न मिले तब तक यही सच है, ऐसा समझकर उसे अपनाया था।

बम्बई में आपका प्रवचन सुनना, प्रभावित होकर शिविरके लिए अनुमति मांगना, यह सब ऐसे हुआ कि कुछ पता ही न चला। आखिर मैं २४ मई के शिविर में सम्मिलित हुई। दिन बीतने लगे। आपका सुव्यवस्थित मार्गदर्शन और धम्मगिरि का पवित्र वातावरण हृदयको पुलकित बना देता था। मौन पालन कर विपश्यना-मार्ग पर चलते हुए हमेशाके लिए वहीं रुक जानेका दिल होता था।

" आदर्श गुरू " कैसा हो सकता है ! इसका सही अनुभव हुआ। अंतिम दिन मैंने आप से पूछा तो आपने बतया कि देवी-देवताओं व कर्मकांडो से जुड़े रहना और "विपश्यना" दोनों एक साथ नहीं चल सकते। फिर भी मनमें घुटन थी कि वर्षों के जुड़े हुए संस्कारोंको कैसे हटाऊंगी ? उलझनमें ही बिस्तर पर लेटी। चिंतनमें सारी बातें चलचित्रकी तरह चल रही थीं। गीताका श्लोक भी याद आया – कि हम पुराने वस्त्रोंको छोड़कर नए वस्त्र धारण करते हैं, ठीक उसी प्रकार जन्म-मृत्यु। इसके साथ ही एक व्यवहारिक बात भी याद आयी – जिस प्रकार जीवनमें कोई नई चीज आते ही पुरानी चीजोंको बिना झिझक छोड़ देते हैं, किसीसे पूछते भी नहीं। तो तुरंत मनमें रोमांच हुआ–पगली ! यदि विपश्यनाका मार्ग अच्छा लगा है तो कर्मकांडको धीरे-धीरे छोड़ दो।

बस मन साफ हो गया। सुबह संशय-विहीन मनसे आपका अंतिम प्रवचन सुनकर अहोभाग्य मानती हुई घर आ गयी।

आपके आशिर्वादसे "विपश्यना" करनेके लिए समय निकाल लेती हूं। आपके सान्निध्य में अनेक लोग विपश्यनाका मार्ग अपनाएं, यही शुभेच्छा प्रकट करती हूं।"

❀

पहाड़पुर, जिला - बेतुल, म. प्र. से श्री सम्पतलाल ने लिखा है, "स. आ. श्री रामअवध वर्मा की प्रेरणासे पहाड़पुरमें उनके २६ अप्रैल से ७ मई के शिविरमें भाग लिया, इससे मुझे तीन प्रकार के लाभ हुए।

प्रथम मेरी दाहिनी भुजा हमेशा कांपती थी अब कंपन नहीं रहा।

दूसरा - मुझे बगैर शराब पिए भूख एवं नींद नहीं आती थी सो अब खुलकर भूख लगती है और नींद भी आती है।

तीसरा लाभ - शराब जैसा दुर्व्यसन जिसे दिन-रात एवं सुबह और शाम पीते रहता था, उससे छुटकारा पाया। ऐसा कल्याण - कारी मार्ग अगर मेरे जीवनके ८ वर्ष पूर्व मिला होता तो यह दुर्व्यसन शायद मेरे जीवनमें नहीं आया होता।

मैं चौतमा (बर्मा) से १९३८ में भारत आया और बादमें बादल - पुर ग्राम - पंचायतका सरपंच होनेके बाद १९७७ से कुछ कुसंगत एवं अभिमानवस पीने लगा। इसके पहले इस जहरको छूना भी पाप समझता था। अब मैं शराब पीनेवाले भाइयोंसे हार्दिक कामना करूंगा कि वे साधना - शिविरमे बैठकर पूरा पूरा लाभ उठाएं।

इस कल्याकारी मार्ग की एक झलकसे ही मेरे जीवनका नक्शा बदलते जा रहा है। काश! यह मार्ग मुझे पहले ही मिला होता। फिर भी मुझे आत्म संतोष है कि,

"भूला उसे न कहिए जो घर आये शाम को।"

कोटि कोटि प्रणामके साथ आपकी मंगल कामना चाहता हूँ।"

❀ ❀ ❀

दूहा धरम रा

धरम दियो गुरुदेवजू किसो रतन अनमोल।
म्रित्युलोक रै जीव नै, दीन्यो इमरत घोल॥

गुरुवर दीनी साधना, चख्यो धरम को स्वाद।
संगत सुखदा सन्त की, हूग्यो दूर विसाद॥

एक जनम जननी दियो, दूजो सिरि गुरुदेव।
दूजो ही अंतिम हुवै, और जनम मत लेव॥

मिल्यो जमारो मिनख को, मिल्यो धरम अनमोल।
इब स्रद्धा सूं जतन सूं, अपणा बन्धन खोल॥

जीं घर मैं दिवळो जळै, हुवै दूर अंधियार।
संत तपै जीं भूमि पर, मिटै भूमि को भार॥

जागै ज्योती संत की, जगती जगमग होय।
जन जन मन हुलसित हुवै, दुक्ख दूर सब होय॥

दोहे धरम के

धन्य होंय मातापिता, धन्य होंय कुल गोत।
महापुरुष जनमें जहां, लिए धरम की ज्योत॥

जिस धरती पर देश पर, संत अवतरित होय।
पुण्य जगे उस देश के, धरती गद्‌गद होय॥

धर्म जगे उस देश में, दूर पाप सब होय।
जन मन के दुखड़े मिटें, जन मन पुलकित होय॥

जब जब प्रकटे संत जग, धन्य होय युग काल।
जहां जहां विचरण करें, होवे देश निहाल॥

तप्त धरा पर धर्म की, अमृत वर्षा होय।
धर्म विहारी संत का, जहां आगमन होय॥

दुर्लभ जीवन मनुज का, दुर्लभ संत मिलाप।
धन्य भाग दोनों मिले, दूर करें भव ताप॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
पौष पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ * January 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/87

Licence No NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)